© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN : 2395-6011 | Online ISSN : 2395-602X

वैष्णव सम्प्रदाय में उदात्तगुण : एक चिन्तन

भावना शुक्ला
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

व्यक्ति के जीवन में उदात्तगुणों का समावेश ही भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता है। भारतीय समाज में धर्म वह आधार है, जिसके माध्यम से व्यक्ति के अन्दर उदात्त गुणों का विकास सम्भव है। जो समाज को धारण करे, वह धर्म है।

जिससे लौकिक अभ्युदय एवं पारलौकिक निःश्रेयस् की सिद्धि हो, वही धर्म है। मनुस्मृति में धर्म को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि धैर्य, क्षमा, मनोनिग्रह, अस्तेय, बाह्य एवं आभ्यन्तर की शुद्धि, इन्द्रियों का संयम, सात्विक बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना इन दस उदात्तगुणों को धर्म के रूप में वर्णित किया गया है। वस्तुतः धर्म व्यक्ति के अन्दर समाज के प्रति ही नहीं अपितु समग्र सृष्टि के प्रति आत्मीयता एवं सह अस्तित्व की भावना को जागरित कर उनमें सामञ्जस्य, शान्ति एवं सौहार्द को स्थापित करता है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि भय का न होना, अन्तःकरण की पवित्रता, तत्त्वज्ञान हेतु ध्यान में निरन्तर स्थिति, दान, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य और प्रिय बोलना, क्रोध न करना, त्याग, शान्ति, निन्दित कार्य न करना, दया, अनासक्ति, कोमलता, अन्यायोचित कर्मों में लज्जा, व्यर्थ की चेष्टाओं का अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्धि, किसी से शत्रुता न होना और अहंकार का अभाव ये दैवी सम्पदा को प्राप्त पुरुषों के लक्षण हैं। चूँकि सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय विश्वकल्याणकारी उदात्तगुणों से परिपूर्ण है अतः वेदमूलक सभी सम्प्रदाय भी उदात्त गुणों को संवर्धित एवं संरक्षित करने हेतु प्रेरित करता है। वैष्णवों का आधारभूत ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता रहा है, जो अपने समन्वयवादी दृष्टिकोण के लिए विश्वविख्यात रहा है। वैष्णव धर्म की मुख्य विशेषता यह रही है कि यद्यपि वहाँ वर्णाश्रम धर्म के प्रति आस्था रही है तथापि भक्ति एवं उपासना के क्षेत्र में समाज के प्रत्येक वर्ण को समान स्थान दिया गया है। भक्ति के राज्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चारों वर्णों में ही किसी भी प्रकार का भेदभाव न करते हुए सबको समानाधिकार दिया गया है। वैष्णव आचार्यों ने वैष्णव धर्म में भक्ति एवं प्रपत्ति को अधिक महत्त्व दिया है। रामानुजाचार्य ने भक्ति के क्षेत्र में चारों वर्णों को समानाधिकार प्रदान किया है। चूँकि भक्ति का मूल प्रपत्ति अर्थात् ईश्वर शरणागति है और ईश्वर का शरणागत

होने के लिए किसी विशेष वर्ण के होने की अपेक्षा नहीं है, अतः वहाँ सभी वर्णों को समान अधिकार दिया गया है। भक्ति के क्षेत्र में शूद्र एवं ब्राह्मणादि में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं है। रामानुजाचार्य कहते हैं कि मनुष्य के सभी सत्कार्यों में ईश्वर स्वयं रहते हैं, फिर चाहे कार्य करने वाला कोई भी क्यों न हो। उनके अनुसार जाति ही नहीं अपितु गुण ही कल्याण का कारण है। रामानुज गीताभाष्य में लिखते हैं कि 'ईश्वर का कथन है कि जो मुझमें अत्यन्त प्रेम के कारण मेरे भजन के बिना जीवन धारण न कर सकने के कारण मेरे भजन को ही अपने एकमात्र प्रयोजन समझने वाले भक्ति मुझे भजते हैं, वे जाति से चाहे श्रेष्ठहों अथवा निकृष्ट हों, वे मेरे समान गुण सम्पन्न होकर मुझमें ही रहते हैं और मैं भी मेरे श्रेष्ठ भक्तों के साथ जैसा व्यवहार करना चाहिए उसी प्रकार का व्यवहार करता हूँ।

वैष्णव धर्म भक्ति प्रधान धर्म है और भक्ति का सम्बन्ध मानव हृदय के भावों से है। चूँकि समान हृदय वाले भावों में परस्पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं है अतः वैष्णव सम्प्रदाय के भावना प्रधान राज्य में सभी के लिए समानरूप से प्रवेश का द्वार खुला हुआ है। वैष्णव सम्प्रदाय के उदारता का सबसे बड़ा उदाहरण यही है कि बाहर से आने वाली अनेक विदेशी जातियों ने वैष्णव धर्म को अङ्गीकृत कर लिया है तथा वैष्णव सम्प्रदाय ने भी उन्हें खुशी के साथ अपने धर्म को स्वीकार करने का अवसर प्रदान किया है। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भागवद् महापुराण में भी कहा गया है कि 'किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन, खश और अन्य जातियाँ भी, जिन्होंने पाप का आश्रय लिया था, वे भी भगवान् विष्णु का शरण ग्रहण कर अर्थात् वैष्णव बनकर शुद्ध हो गयी। भारतीय जनमानस में शुचित एवं अहिंसा का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है तथा उसमें सर्वाधिक योगदान वैष्णव सम्प्रदाय का रहा है क्योंकि वैष्णव सम्प्रदाय में आभ्यन्तर एवं बाह्य शुचिता एवं हिंसा न करने का उपदेश प्रदान किया गया है। कुछ पाश्चात्य अनुयायियों एवं उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों का जो यह मत है कि अहिंसा का प्रचार–प्रसार सर्वप्रथम बौद्ध धर्म ने किया तदनन्तर जैन धर्म ने किया है यह कहना उचित नहीं है क्योंकि आचार्य बलदेव उपाध्याय ने ही स्वयं कहा है कि इस भारतवर्ष में वैष्णव धर्म ने ही सर्वप्रथम अहिंसा का शङ्खनाद फूँका था, जिसका अनुकरण कर जैन एवं बौद्ध धर्म ने कालान्तर में इतनी अधिक ख्याति प्राप्त की।

वैष्णव मत की उदात्तता के विचार भागवत, महाभारत आदि ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होता है। श्रीमद्भागवत कहा भी गया है कि 'जो धन तथा अपनों में, अपने तथा परायों में भेद नहीं करता है तथा समस्त प्राणियों में समान भाव रखता है एवं प्रत्येक स्थिति में शान्त रहता है, वही उत्तम भागवत है। आज के भौतिकवादी युग में हम देखते हैं कि समाज का प्रत्येक वर्ग अधिकाधिक धनसंग्रह एवं असंयत भोग की प्रतिस्पर्धा में व्याकुल होकर दौड़ रहा है, समाज में सर्वत्र अशान्ति एवं असन्तोष दृष्टिगोचर हो रहा है किन्तु भागवत में इस सन्दर्भ में उदात्तता की पराकाष्ठा दृष्टिगोचर होती है। श्रीमद्भागवत के अनुसार चारों वर्णों के लिए साधारण धर्म यह है

कि मन, वाणी और शरीर से किसी की भी हिंसा न करें, सत्य पर दृढ़ रहें, चोरी न करें, काम, क्रोध तथा लोभ से बचें और जिन कर्मों को करने से समस्त प्राणियों की प्रसन्नता और उनका हित हो वही करें। महाभारत में व्यक्ति को उसी स्थान पर निवास करने की आज्ञा दी गयी है,जहाँ पर वेद, यज्ञ, तप, सत्य, दान तथा अहिसा धर्म से संयुक्त होकर प्रचलित हो। गीता के अनुसार 'भगवान् अपने प्रिय भक्त का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो समस्त भूतों में द्वेषभाव से रहित, सबसे मैत्री तथा करुणा का भाव रखने वाला तथा ममत्व एवं अहंकार से रहित, सुख–दुःख की प्राप्ति में समानभाव रखने वाला तथा क्षमा प्रदान करने वाला है। जो सदैव सन्तुष्ट रहने वाला, योग के द्वारा संयुक्त, मन एवं इन्द्रियों सहित शरीर को वशीभूत किए हुए तथा दृढ़निश्चय से युक्त है, वही मुझमें समर्पित मनबुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको अतिप्रिय है। गीता में भगवान् अपने भक्त के उदात्त गुणों के सन्दर्भ में कहते हैं कि 'जो पुरुष शत्रु और मित्र में, मान तथा अपमान में समानभाव रहता है, जो सर्दी–गर्मी, सुख–दुःखादि द्वन्द्वों में भी समभाव रहता है, अन्तःकरण की वृत्तियो से शान्त एवं आसक्ति रहित है। जो निन्दा एवं स्तुति को समान समझने वाला है तथा जो मौन धारण कर प्रत्येक स्थिति में सदैव सन्तुष्ट रहता है, जो निवास स्थान से ममतारहित है, ऐसा स्थिर बुद्धि वाला पुरुष जो भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ है, वह मुझे प्रिय है।

वैष्णव भक्तों में उदारता एवं परोपकार की भावना कूट–कूट कर भरी हुई है। आचार्य रामानुज के जीवन की एक घटना से यह बात पूर्णतः चरितार्थ होती है। आचार्य रामानुजा के गुरु नाम्बि, जिन्हें गोष्ठीपूर्ण भी कहा जाता है, उन्होंने रामानुज को अष्टाक्षरमन्त्र 'ओम् नमो नारायणाय' की दीक्षा दी थी तथा साथ ही साथ यह निर्देश भी दिया कि इस मन्त्र को वे गुप्त ही रखें क्योंकि यह मन्त्र कल्याणकारी तो है, किन्तु यदि तुमने इसका उपदेश दूसरे को दिया तो तुम नरक में जाओगे। तब आचार्य रामानुज ने सोचा कि भले ही मुझे नरक में क्यों न रहना पड़े। मैं समाज का उद्धार करने हेतु इस अष्टाक्षर मन्त्र का उपदेश सभी प्राणियों को करूँगा ताकि वे सभी दुःखों से मुक्त हो जाए, तब उन्होंने लोक कल्याणार्थ मन्दिर के शिखर पर चढ़कर उच्च स्वरों में अष्टाक्षर मन्त्र का उच्चारण किया। इसे जानकर पहले तो उनके गुरु रुष्ट हुए किन्तु इसके मूल में छिपी अच्छी भावना को जानकर उन्होंने रामानुजाचार्य को यह आशीर्वाद दिया कि अब से विशिष्टाद्वैत मत 'रामानुज मत' के नाम से जाना जाएगा।

इसके अतिरिक्त रामानुजाचार्य ने श्रीरङ्गपट्टम् के उत्तर में विद्यमान मेलुकोट (दक्षिण बदरिकाश्रम) नामक स्थान पर प्रसिद्ध तिरुनारायण पेरुमल वैष्णव मन्दिर के द्वार पञ्चमों (जिसे शूद्र से निकृष्ट माना जाता था ऐसे लोगों) के लिए खोल दिया। इस मन्दिर को सन् 1099 में आचार्य रामानुज ने ही बनवाया था। इस प्रकार आचार्य रामानुज ने ब्राह्मणेतर होने पर भी अन्य वैष्णव धर्म को अङ्गीकार करने वाले धर्मावलम्बियों को

जाति–चिन्हों तथा जीवन पद्धति को स्वीकार करने की आज्ञा तथा अनेक अन्य मन्दिरों में प्रवेश करने की अनुमति भी दिलवाई।

आचार्य रामानुज के अतिरिक्त भी श्री पिल्लई लोकाचार्य एवं आचार्य वेदान्तदेशिक का भी वैष्णव धर्म के उत्कर्ष में विशेष योगदान रहा है। लोकाचार्य स्वामी ने प्रपत्ति की व्यवस्था का ईश्वर शरणागति के द्वारा समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए समानरूप से खोल दिए। वैष्णव सम्प्रदाय में प्रपत्ति की व्यवस्था में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान श्री पिल्लई लोकाचार्य स्वामी का ही माना जाता है। आचार्य वेदान्तदेशिक ने संस्कृत वेद एवं कर्मकाण्ड को भी विशेष महत्त्व दिया।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि वैष्णव आचार्यों ने सम्पूर्ण दक्षिण भारत को अपनी उदारता एवं ईश्वर के प्रति समर्पण की भावना से अभिसिञ्चित ही नहीं किया अपितु उनकी भक्तिधारा दक्षिण भारत से उत्तर भारत तक प्रवाहित हुई। यह भक्ति का मार्ग समर्पण, त्याग, संयम एवं समता का मार्ग है। प्रत्येक वैष्णव के अन्तःकरण में इन गुणों का नैसर्गिक रूप से समावेश है। महाभारत, गीता एवं भागवतादि ग्रन्थ वैष्णव सम्प्रदायों का आधारभूतग्रन्थ होने के कारण वैष्णव सम्प्रदायों में स्वीकार्य है। स्वयं रामानुजाचार्य ने भक्तिमार्ग के प्रचार–प्रसार हेतु उत्तर भारत में भी तीर्थयात्रा की तथा सम्पूर्ण उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत को अपनी भक्तिधारा के प्रवाह से एकीकृत कर राष्ट्रीय समता की भावना को पुष्ट किया।

सन्दर्भ

1. धारणाद् धर्ममित्याहुः। – महाभारत/कर्णपर्व दृ (69/59)
2. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धि स धर्मः। – वैशेषिक (1/0/2)
3. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
4. धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।। – मनुस्मृति (6/92)
5. अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
   दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।
   अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
   दया भूतेषवलोलुत्वं मार्दवं हरिचापलम्।।
   तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
   भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।। – गीता (16/1,2,3)
6. डॉ. कृष्ण गोपाल, भारत की सन्त परम्परा और सामाजिक समरसता, पृ. 38–39
7. श्री रामकृष्णानन्द, श्री रामानुज चरित, पृ. 232, 'न जातिः कारणं लोके गुणाः कल्याणहेतवः।।'

8. ये मां भजन्ते ते जात्यादिभिः उत्कृष्टाः अपकृष्टाः वा मत्समानगुवद्यथासुखं मयि एव वर्तन्ते, अहमपि तेषु मदुत्कृष्टेषु इव वर्ते। – रामानुजभाष्य गीता (12/18–19)

9. किरात–हूणांध्र–पुलिद–पुल्कसा आभीर कडका यवना खशादयः।
मेऽन् च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभाविष्णवे नमः।।
– श्रीमद्भागवद्महापुराण दृ (2/4/18)

10. आचार्य बलदेव उपाध्याय विरचित 'वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त', पृ. 8

11. न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा।

12. सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः।। – श्रीमद्भागवतमहापुराण (11/2/52)

13. अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः।। – श्रीमद्भागवतमहापुराण

14. यत्र वेदाश्च यज्ञाश्च तपः सत्यं दमस्तथा।
अहिंसा धर्म संयुक्ता प्रचरेयुः सुरोत्माः।
स वो देशः सेवितव्यो .....।। दृ महाभारत, शान्तिपर्व (340/89)

15. अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। गीता (12/13–14)

16. समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।। – गीता (12/18–19)

17. डॉ. कृष्णगोपाल विरचित, 'भारत की सन्त परम्परा और सामाजिक समरसता।' पृ. 38